(2008) 13 एस०सी०आर० 682
पंजाब राज्य व अन्य बनाम प्रेम सरुप
(दीवानी अपील सं० 5812/2008)
सित्मबर 18, 2008
( न्यायमूर्ति एस०बी०सिन्हा एवं न्यायमूर्ति सीरियाक जोसेफ )

*सेवा विधि:*

***पंजाब पुलिस नियम, 1934:***

*नियम 16.3(1) ख)- अनुशासनात्मक कार्यवाहियाँ-पंजाब पुलिस मे आरक्षि-ट्रायल कोर्ट द्वारा भा०द०सं० की धारा 70 के अन्तर्गत दोषसिद्धि लेकिन अपीलीय अदालत द्वारा यह मानते हुए बरी कर दिया गया कि अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा इस मामले का समर्थन नहीं किया गया और पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया- अनुशासनात्मक कार्यवाही आरक्षि के विरुद्ध प्रारम्भ - दो साल के वेतन के समपहरण की सजा - आरक्षि द्वारा वाद अनुशासनात्मक कार्यवाही को अपास्त करने की याचना करते हुए- अपीलीय न्यायालय द्वारा आज्ञप्त - द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा डिक्री की पुष्टि -विभाग का तर्क है कि मुख्य अभियोजन पक्ष के गवाह को हमसाज कर लिया गया, आपराधिक आरोप सिद्ध नहीं हो सके और, इसलिए, नियम 16.3(1) (ख) के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही अपास्त नहीं हो सकती है -उपधारित : विभाग यह दर्शाने मे सफल नही रहा है कि जो गवाह आपराधिक न्यायालय के समक्ष पक्षद्रोही हो गए, उनको विभागीय कार्यवाही में परीक्षित किया गया है, एवं यह सिद्ध करने के लिए किसी सामग्री को रिकॉर्ड पर नही लाया गया है - आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप का कोई मामला नही बनता है - अन्यथा भी, उत्तरदाता के विरुद्ध आरोप सिद्ध नही होते है- इसके अलावा, घटना वर्ष 1974 में हुई थी और आरक्षि वर्ष 1979 में दोषमुक्त कर दिया गया था। और इस प्रकार, समय के इस सुदूर बिंदु पर, आक्षेपित निर्णय के साथ कोई हस्तक्षेप आवश्यक नही है, विशेष रूप से, जब विभाग ने कोई बुनियादी तथ्य अपने इस तर्क के समर्थन मे नहीं रखा है कि नियम 16.3(1)(ख) इस मामले में आकर्षित नही होगा।*

*भारत संघ अन्य बनाम नमन सिंह शेखावत* 2008 **(5) एससीआर 137= (2008) 4 एससीसी 1;** *पुलिस आयुक्त, नई दिल्ली बनाम नरेन्द्र सिंह* 2006 **(3) एससीआर 872=(2006) 4 एससीसी 265-संदर्भित**

**विधि व्यवस्थाऐ संदर्भित-**

**2008 (5) एससीआर 137 पैरा 12, 2006 (3) एससीआर 872 पैरा 13**

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं० 5812/2008

आरएसए सं० 1581,वर्ष 1988 ,मे पंजाब व हरयाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ द्वारा अन्तिम निर्णय व आदेश दिनांकित 22-11-2005 से

अपीलकर्तागण की ओर से अजयपाल एवं संजय जैन।

उत्तरदातागण की ओर से सुब्रमनयम प्रसाद, वरुण भन्डारी गगनानी एवं रामेश्वर प्रसाद गोयल ।

न्यायालय द्वारा निम्नलिखित निर्णय सुनाया गया-

अनुमति प्रदान की जाती है।

(1) यह अपील पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा नियमित द्वितीय अपील संख्या 1581/1988, में पारित निर्णय व आदेश के विरुद्ध योजित की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अन्तर्गत अपीलकर्तागण द्वारा अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, पटियाला द्वारा निर्णय और डिक्री दिनांक 5.1.1988 , जिसमे निर्णय और डिक्री दिनांकित 29-10-1985, को पलट दिया गया था, ,के विरुद्ध अपील योजित की गयी थी, इस आशय की घोषणा हेतु है कि वरिष्ठ पुलिस आयुक्त के आदेश दिनांकित 01-07-1981, जिसमे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के उस आदेश का समर्थन और पुनर्जीवित किया गया जिसमें उत्तरदाता पर दो साल की अवधि के वेतन के समपहरण का दंड अधिरोपित किया गया था एवं पुलिस उपमहानिरीक्षक, अपीलीय प्राधिकारी के आदेश और साथ ही पुलिस महानिरीक्षक, पुनरीक्षण प्राधिकारी, के आदेश अवैध थे।

(2) मामले के मूल तथ्य विवाद में नहीं है।

(3) उत्तरदाता एक पुलिस आरक्षि था। वह भा० दं० सं० की धारा 170 के अन्तर्गत कथित अपराध वर्ष 1974 मे कारित करने हेतु, साल 1979 में उस पर अभियोग चलाया गया। उसे दोषसिद्ध किया गया। फिर भी, उसके द्वारा आपराधिक अपील योजित की गयी। विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, पटियाला द्वारा निर्णय और आदेश दिनांकित 08.01.1979 द्वारा उक्त अपील को यह उपधारित करते हुए स्वीकार कर लिया गया कि-

"विद्वान पी.पी. ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वह विद्वान मजिस्ट्रेट के निर्णय का समर्थन करने में असमर्थ हैं। पी.डब्ल्यू.1 बंत सिंह और पी.डब्ल्यू.2 प्रेम सिंह दोनों ने वाद में अभियोजन कथानक का समर्थन नहीं किया और परिणामस्वरूप उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने श्री जसवन्त सिंह और जांच अधिकारी श्री मोहिंदर सिंह द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर अपीलकर्ताओं की दोषसिद्ध किया। लेकिन उनका कथित अपराध, भा०द०सं० की धारा 170 के अन्तर्गत आरोप है कि अपीलकर्ता सुच्चा सिंह ने डीटीओ रोपड़ के पद पर होने का दिखावा किया और आंशिक रूप से ट्रैफिक चेकिंग की, यह पीडब्लू प्रेम सिंह और पीडब्लू बंत सिंह के साक्ष्य के अभाव में स्थापित नही हो सका। उनके गवाहों ने कहा कि उन्हें इस संबंध में कुछ भी नहीं पता था। ऐसा होने पर, भा०द०सं० की धारा 170 के अन्तर्गत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि नही हो सकती थी।"

4. यद्यपि, उन्हीं आरोपों पर उत्तरदाता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही आरम्भ की गई थी जिसमें उस पर वेतन का समपहरण करने का दंड दिया गया।

5. उसने वर्ष 1982 में उप-न्यायाधीश, द्वितीय श्रेणी, पटियाला के न्यायालय में यह कथन करते हुए वाद योजित किया कि उत्तरदाता को संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त कर दिया गया था और

इस प्रकार, उसकी दोषमुक्ति गुण-दोष के आधार पर नहीं थी, अनुशासनात्मक कार्यवाही में दण्ड के आदेश को भी निरस्त किया जाना चाहिये।

(6) उक्त वाद निर्णय एवं डिक्री दिनांकित 29.10.1985 के द्वारा निरस्त कर दिया गया। यहाँ उत्तरदाता द्वारा उसके विरुद्ध एक अपील दायर की, जिसे विद्वान जिला न्यायाधीश, पटियाला द्वारा निर्णय एवं डिक्री दिनांकित 5.1.1988 के माध्यम से स्वीकार किया गया। जैसा कि इसके पूर्व अवेक्षा की गयी है, अपीलकर्ताओं द्वारा योजित की गई द्वितीय अपील को आक्षेपित निर्णय मे उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया है।

7. एकमात्र विवाद जो हमारे सामने उठाया गया है, वह यह है कि आपराधिक अपील संख्या 125 ,वर्ष1979 में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, पटियाला द्वारा पारित निर्णय दिनांकित 8.1.79 का अवलोकन यह दर्शाता है कि मुख्य अभियोजन साक्षीगण हमसाज कर लिये गये थे, आपराधिक आरोप सिद्ध नहीं किये जा सके और, इस प्रकार, प्रकरण पुलिस नियम, 1934 के नियम 16.3 के दायरे में आता है जो इस प्रकार है:

" 16.3. न्यायिक दोषमुक्ति पर निम्नलिखित कार्यवाही की जायेगी-

(1) जब किसी पुलिस अधिकारी पर वाद चलाया गया हो और उसे आपराधिक न्यायालय ने दोषमुक्त कर दिया हो तो उसे विभागीय तौर पर उस ही अ ारोप पर अथवा उक्त वाद मे प्रदत्त साक्ष्य के आधार पर भिन्न किसी आरोप मे दंडित नहीं किया जाएगा, ऐसा साक्ष्य चाहे वास्तव में दिया गया हो अथवा नहीं जब तक कि:
a) आपराधिक आरोप तकनीकी आधार पर विफल रहे हैं , अथवा
b) न्यायालय या पुलिस अधीक्षक की राय में , अभियोजन साक्षीगण को हमसाज कर लिया गया हो, अथवा
c) न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा हो कि अपराध वास्तव में कारित किया गया था और संदेह संबंधित पुलिस अधिकारी पर है, अथवा
d) आपराधिक मामले में उद्धृत साक्ष्य न्यायालय के समक्ष आरोप से ऐसे असंबंधित तथ्यों को प्रकट करता है, जो विभागीय कार्यवाही को किसी भिन्न आरोपो के आधार पर न्यायोचित बनाता हो, अथवा
e) नियम 16.25(1) के अन्तर्गत ग्राहय अतिरिक्त साक्ष्य विभागीय कार्यवाही मे उपलब्ध हो।

8. जांच अधिकारी की आख्या हमारे समक्ष नहीं है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश, जिसमे शास्ति अधिरोपित की गयी थी, भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। हमने इससे पूर्व भी यह पाया है कि उत्तरदाता द्वारा योजित वाद मे अपीलकर्ता द्वारा दिया गया एकमात्र तर्क यह था कि उसे संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त किया गया है।

यहां तक कि दूसरी अपील के ज्ञापन में भी यह तर्क दिया गया था:-

"4. यह कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय यह विचार करने मे विफल रहा है कि उत्तरदाता/वादी की दोषमुक्ति गुण-दोष के आधार पर नहीं बल्कि उसे संदेह का लाभ देकर आरोप

से दोषमुक्त किया गया था और विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा विश्वास किए गए प्राधिकार को वर्तमान परिस्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि नियम 16.3(1) के अन्तर्गत उन्हीं आरोपों पर जांच कार्यवाही आरम्भ की जा सकती है यदि दोषमुक्ति गुण-दोष के आधार पर नहीं है और वर्तमान मामले में भी वही अपवाद लागू होता है।"

9. पुलिस नियम, 1934 के नियम 16.3 के उप-नियम (1) के खंड (ख) का प्रयोग, इस प्रकार, उक्त सिविल वाद में अपीलकर्तागण के विवाद की जड़ रहा है।

10. इसलिए, हम इस मत के है कि आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई मामला नहीं बनता है।

11. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि, किसी भी स्थिति में, नियोक्ता के लिए विभागीय कार्यवाही आरम्भ करने का मार्ग खुला है , इस तथ्य के बावजूद कि कर्तव्यभ्रष्ट अधिकारीगण समान आरोप पर दोषमुक्त कर दिये गये है।

**{देखें: पुलिस आयुक्त, नई दिल्ली बनाम नरेंद्र सिंह (2006) 4 एससीसी 265]**

12. हमारा ध्यान, यद्यपि, उत्तरदाता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस. प्रसाद द्वारा इस न्यायालय द्वारा एक नूतन निर्णय "भारत संघ और अन्य बनाम नमन सिंह शेखावत -(2008) 4 एससीसी 1 की अोर आकर्षित किया गया जिसमें इस न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ, इस आधार पर कि जांच अधिकारी पक्षपाती था, उच्च न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखा और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के दंड देने वाले आदेश को निरस्त कर दिया ।

13. फिर भी, हम विद्वान अधिवक्ता श्री एस० प्रसाद के इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि इस न्यायालय ने इस मामले मे पुलिस आयुक्त,नई दिल्ली बनाम नरेंदर सिंह - (2006) 4 एससीसी 265 में अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है क्योंकि उसमें भी इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कानून को इस प्रकार बताया है-

" 12. इसमें कोई विवाद नहीं है कि किसी आपराधिक मामले में दोषसिद्धि के निष्कर्ष को दर्ज करने और विभागीय कार्यवाही में आवश्यक सबूत के मानक अलग-अलग हैं। जहां एक आपराधिक मामले में, किसी आरोप को सभी उचित संदेहों से परे साबित करना आवश्यक है, विभागीय कार्यवाही में संभाव्यता की प्रधानता उद्देश्य को पूरा करेगी **(देखें कमलदेवी अग्रवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य- (2002) 1 एससीसी 555)।**

13. इस न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला के आधार पर अब यह पूर्णत: तय हो चुका है कि यदि कोई कर्मचारी किसी आपराधिक आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया हो, तो यह अपने आप में उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही चलाने मे पहल न करने का आधार नहीं होगा अथवा दोषमुक्त किये जाने की स्थिति में कार्यवाही को समाप्त करने का आधार नही होगा ।"

14. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि हमारे समक्ष अपीलकर्ता यह दर्शाने में सफल नहीं हुऐ हैं कि वे साक्षीगण जो आपराधिक न्यायालय के समक्ष पक्षद्रोही हो गये, उनको विभागीय कार्यवाही में परीक्षित कराया गया है और, इसके अलावा, चूँकि इसे साबित करने के लिए कोई सामग्री रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई है; अन्यथा भी, उत्तरदाता के विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं हुआ है, हम इस मत के है कि आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप के लिए कोई मामला नहीं बनता है । इसके अलावा, जैसा कि यहां पहले बताया गया है कि घटना वर्ष 1974 में हुई और उत्तरदाता को वर्ष 1979 में दोषमुक्त कर दिया गया था और इस प्रकार, इस सुदूर समय में, आक्षेपित निर्णय में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, विशेष रूप से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्तागण ने अपने तर्क के समर्थन में कोई बुनियादी तथ्य हमारे सामने नहीं रखा है कि इस प्रकरण में पुलिस नियम,1934 की धारा 16.3 की उप-धारा (1) का खंड (बी) आकर्षित होगी ।

15. ऊपर बताए गए कारणों के आधार पर अपील निरस्त की जाती है। कोई हर्जा नहीं लगाया जाता है।

अनुवादकर्ता-

(मौ० साजिद-प्रथम)
मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट
बदायूँ।

MOHD SAJID

Digitally signed by MOHD SAJID
Date: 2023.10.21 11:31:34 +05'30'